National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 3; September 2017; Page No. 588-589

अवेस्तीय तथा वैदिक अग्नि में साम्य एवं वैषम्य

डॉ0 भानु प्रकाश त्रिपाठी

अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

आग दैनिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, किन्तु इस तथ्य से यह प्रतीत नहीं होता है कि भारोपीय काल में अग्नि को देवत्व प्रदान किया गया था।

प्राचीन काल में देवों को यज्ञादि में उनका भाग प्रदान करने की सबसे सरल और सामान्य विधि उसे वेदी में प्रज्ज्वलित अग्नि में डाल देना था। जिससे कि अग्नि धूम के रूप में आहुति को स्वर्गस्थ देवों तक ले जाए। देवों को अन्नादि प्रदान करने की यह प्राचीनतम पद्धति थी क्योंकि रोमन, ग्रीक एवं भारतीय धर्मों में भी यह समान रूप से पायी जाती है। इस प्रकार मनुष्यों के द्वारा दी गयी वस्तु को देवों तक पहुँचाने के कारण मर्त्यों एवं अमरों के बीच श्रृंखला के रूप में अग्नि का बड़ा मान था। उसे श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखा जाता था तथा अत्यन्त पवित्र माना जाता था। आर्यों के परस्पर विभाजन के फलस्वरूप अग्नि की उपासना अनेक जातियों में विभिन्न रूपों में विकसित हुई, और प्रायः प्रत्येक स्थान में इसे एक महत्त्वपूर्ण देवता का पद प्राप्त हो गया।

लिथुआनियन जाति में यह विशेष रूप से आदर तथा पूजा की पात्र थी। इसे उग्निस् स:जेवेन्ता (पवित्र अग्नि) तथा स:जेवेन्ता पोनिके (पवित्र स्वामिनी) कहा जाता था। पूरे वर्ष भर इसकी उपासना होती थी और इसे घरों में निर्मित वेदियों में सदा प्रज्ज्वलित रखा जाता था। इसी प्रकार रोम में भी वेदी की देवी वेस्ता थी, जिसकी एक विशेष प्रकार के गोल मन्दिरों में पूजा होती थी। ये मन्दिर इसी अग्नि की देवी 'वेस्ता' के लिए बनाये जाते थे। मन्दिरों में इसकी पूजा के लिए एक पुजारिन नियुक्त की जाती थी, जो अविवाहित रहती थी। मन्दिर में अग्नि को दो लकड़ियों की सहायता से प्रज्ज्वलित किया जाता था।

ग्रीक में अग्नि की देवी 'हैस्तिया' है। वह घर की वेदो में स्थित अग्नि की अधिष्ठात्री है। उसकी कल्पना एक ऐसी कुमारी देवी के रूप में की गयी है, जो प्रत्येक गार्हस्थिक कर्म पर स्वामित्व रखती है। ग्रीक के बड़े–बड़े नगरों में प्रितानियुम् (नागरिकों के जमा होने का एक मण्डप) के नीचे पवित्र अग्नि सदा प्रज्ज्वलित रखी जाती थी एवं समस्त ग्रामवासी ऐसे प्रितानियुम् से अपने–अपने घरों के लिए इस पवित्र अग्नि को ले आते थे।

सीथियन जाति में भी 'इस्तिया' नामक अग्नि देवी की पूजा होती थी और इनका, उनके देवमण्डल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन काल से चली आ रही इस अग्नि उपासना की उपेक्षा . जरथुस्त्र भी नहीं कर सके। ज़रथुस्त्र के अनुसार अग्नि दिव्य, शाश्वत, अनन्त, ईश्वरीय ज्योति का पार्थिव स्वरूप है। अग्नि पृथिवी पर अहुरमज़्दा की शक्ति एवं तेज का सर्वोत्कृष्ट भौतिक प्रतीक है, उसे मुख की अशुद्ध वायु से फूँकना भयंकर पाप है। अहुरमज़्दा का प्रतीक होने के कारण प्राचीन पारसी धर्म में अग्नि की पूजा का अत्यधिक महत्त्व था।

आग को पारसी/फारसी/ईरानी/अवेस्ता में 'आतर' कहते हैं। वैदिक ऋषियों ने इसके लिए 'अग्नि' शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि वैदिक 'अग्नि' एवं अवेस्तीय 'आतर' में कोई भाषा–वैज्ञानिक सम्बन्ध नहीं है, तथापि दोनों शब्दों में कई समानताएँ हैं।

पारसी धर्म में आतर शब्द से 'अथ्रवन्' निष्पन्न होता है जिसका अर्थ पुरोहित या अग्नि की पूजा करने वाला व्यक्ति है। इसी प्रकार वैदिक साहित्य में भी अथर्वन् नाम पाया जाता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में अपने पूर्वजों के रूप में इनका अत्यन्त आदरपूर्वक स्मरण किया गया है। कुछ स्थलों पर यह उल्लेख है कि सर्वप्रथम अथर्वा ने ही मन्थन करके अग्नि को उत्पन्न किया, तदनन्तर अन्य व्यक्तियों ने भी उसी विधि से अग्नि को उत्पन्न करना प्रारम्भ किया। ऋग्वेद के कतिपय स्थलों पर यह शब्द पुरोहित अर्थ का भी वाची है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द मूलतः अग्नि से सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन पुरोहितों का सूचक रहा होगा।

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अग्नि को द्यौः का पुत्र कहा गया है। जैसे–अग्निरमृतो अभवद्वयोभिः यदेनं द्यौर्जनयत् सुरेताः एवं दिवः शिशुं सहसः सुनूमग्निं यज्ञस्य केतुमरूषं यजध्यै। ठीक इसी प्रकार अवेस्ता में भी आतर को कई स्थानों पर अहुरमज़्दा का शिशु कहा गया है।

ऋग्वेद में अग्नि को कहीं–कहीं इन्द्र का शस्त्र कहा गया है। जिससे वह वृत्र नामक असुर का वध करता है। इन्द्र जिस वज्र नामक विशेष आयुध से वृत्र, जो कि मेघ रूप था, का नाश करते हैं, वह आकाशीय विद्युत् रूप अग्नि ही है। इसी प्रकार आतर को भी अहुरमज़्दा के मुख्य शस्त्र के रूप में चित्रित किया गया है, जिससे वह दैत्यों का विनाश करता है।

जिस प्रकार वेदों में आहवनीय, दाक्षिणात्य एवं गार्हपत्य नामक तीन प्रकार की अग्नियाँ पायी जाती हैं उसी प्रकार पारसी में भी तीन प्रकार की अग्नियाँ पायी जाती हैं, ग्रिसवोल्ड तथा श्पीगल के अनुसार ये क्रमशः गृह, ग्राम तथा समुदाय से सम्बन्धित हैं। अवेस्ता में कई स्थलों पर आतर की इन सम्पूर्ण अग्नियों के साथ स्तुति की गयी है, इसी प्रकार ऋग्वेद में भी अग्नि से सभी अग्नियों के साथ यज्ञ एवं स्तुति धारण करने की प्रार्थना की गई है।

जिस प्रकार ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अग्नि को गृहपति अथवा घर या परिवार, का स्वामी कहा गया है उसी प्रकार यस्न में भी आतर को प्रत्येक घर का स्वामी कहा गया है।

अवेस्ता में जिस प्रकार अहुरमज़्दा के पुत्र आतर से यश, धन, धान्य, ज्ञान, ओज, शक्ति एवं पुत्र–पौत्रादि देने की प्रार्थना की गयी है। ठीक इसी प्रकार ऋग्वेद में अग्नि से अनेक स्थानों पर प्रार्थनाएँ की गयी हैं, जैसे ऋग्वेद के एक सूक्त में अग्नि से धन, विजय, यश आदि की प्रार्थना की गयी है। इतना ही नहीं ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के पहले सूक्त में ही अग्नि का यह उदार स्वरूप स्पष्ट होता है जहाँ उससे धन एवं वीरता की याचना की गई है और उससे पिता के समान कल्याणकारी होने की प्रार्थना की गई है।

अवेस्ता में कुछ स्थानों पर अहुरमज़्दा के पुत्र आतर का अझि के साथ युद्ध एवं अन्त में अझि की पराजय का वर्णन है। ठीक उसी

प्रकार ऋग्वेद में भी इन्द्र–वृत्र युद्ध में, इन्द्र वज्र से वृत्र का वध करता है एवं उस पर विजय प्राप्त करता है। इन्द्र का विशेष आयुध वज्र और कुछ नहीं केवल अन्तरिक्षस्थ अग्नि या ताडित् मात्र है। किन्तु अवेस्ता में इन्द्र के लोभ के कारण अझि अथवा वृत्र के वध का कार्य उसके उपकरणों को करना पड़ता है।

इन समानाताओं के होते हुए भी वैदिक अग्नि तथा अवेस्तीय आतर की धारणाओं में पर्याप्त भेद भी है। वैदिक साहित्य में अग्नि का देवीकरण पूर्ण है, किन्तु अवेस्ता के आतर का देवीकरण अधूरा है डार्मस्टेटर का मत है कि अवेस्ता में आतर की धारणा पूर्णतः तात्त्विक है, उसमें कोई भी मानवीय तत्त्व नहीं है। आतर अहुरमज़्दा का अंश है। ज़रथुस्त्र का जन्म उसी में हुआ था। आहुर, आतर तथा वोहुमन ज़रथुस्त्र की रक्षा करते हैं। आतर सम्पूर्ण मनुष्यों एवं पशुओं में व्याप्त है। जब आहुर ने आतर का निर्माण किया था तो उसमें केवल प्रकाश एवं तेज मात्र था अंग्रामइन्यु ने उसके साथ धुएं एवं कालिख का संयोग किया। ये सभी उसे अग्नि का सूक्ष्म रूप सूचित करते हैं।

ऋग्वेद में अग्नि को प्रायः अतिथि कहा गया है, वह देवता है किन्तु मनुष्यों के कल्याणार्थ उसने मर्त्यों के बीच में अपना निवास बना रखा है।

मनुष्य देवताओं को जो कुछ प्रदान करना चाहते हैं, अग्नि उसको अभीष्ट देवता के पास पहुँचा देता है इसीलिए उसे हव्यवाट् कहा गया है। किन्तु अवेस्ता में अग्नि का यह देवत्वमय रूप नहीं है। यहाँ अग्नि एक देवता के रूप में नहीं वरन् तत्त्व के रूप में स्तुत्य है। अग्नि की उपासना स्वतः ही होती है। प्राचीन ईरान के प्रत्येक धार्मिक भवन में इसकी स्थिति रहती थी और वहाँ अग्नि की विशेष पूजा होती थी।

वस्तुतः अग्नि के भौतिक तत्त्व से उत्पन्न होने वाले देवों में निश्चित रूप से महत्त्व की दृष्टि से वैदिक 'अग्नि' का स्थान सर्वोपरि है। ऋग्वेद के सर्वप्रथम मन्त्र में ही उनकी स्तुति की गयी है और उन्हें यज्ञ का तेजस्वी पुरोहित बताया गया है केवल इतना ही नहीं अपितु ऋग्वेद के अष्टम एवं नवम मण्डलों के अतिरिक्त शेष आठों मण्डलों के प्रारम्भिक सूक्त अग्नि को ही समर्पित हैं। जिससे इनकी महत्ता स्पष्ट रूप से ज्ञापित होती है। पृथिवीस्थानीय देवों में अग्नि को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और ऋग्वेद के लगभग 1000 सूक्तों में उनके लिए प्रायः 200 सूक्त कहे गये हैं। यज्ञ एवं कर्मकाण्ड के महत्त्व के साथ–साथ वैदिक युग में अग्नि का भी महत्त्व बढ़ा है और ऋषियों की दृष्टि उनके भौतिक रूप से उठकर अन्तरिक्ष एवं आकाश के रूप अर्थात् विद्युत् एवं सूर्य तक भी पहुँची है।

संदर्भ

1. ऋग्वेदः10.14.6
2. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। ऋक् 6.16.13 एवं इममुत्यमथर्ववदग्निं
3. ऋक्–10.45.8
4. ऋक्–6.49.2
5. यस्न 19/47, फरगार्द 3(15, 5–10, 15–26 आदि)
6. यस्न 62/5
7. यस्न 2/12
8. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमंयज्ञमिदंवचः।
   चनो धाः सहसोयहो।। ऋक्–1.26.10
9. ऋक्0–1.1.2, 7.14.2आदि 10
10. यस्न 17.11
11. अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्र सुवाचं भागं यशसं कृधी नः।। ऋ0 3.1.19
12. ऋक्0–1.1.3 एवं 9वाँ मन्त्र।
13. यश्न 19.47–51
14. जे0अ0 (से0बु0ई0 भाग 4) पृष्ठ 76
15. ऋक्0–2.4.1
16. ऋक्0–8.60.1
17. ऋक्0–3.2.75
18. ऋक्0–1.1.1